ओ३म्

# 'पीड़ितों की सेवा मनुष्य का धर्म'

**–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

मनमोहन कुमार आर्य

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके चारों ओर अपने निकट सम्बन्धी और पड़ोसियों के साथ मित्र व पशु–पक्षी आदि का समुदाय दृष्टिगोचर होता है। समाज में सभी मनुष्यों की शारीरिक, सामाजिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य की स्थिति व आर्थिक स्थिति समान नहीं होती है। इनमें अन्तर हुआ करता है। यह सम्भव है कि एक व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने के साथ शारीरिक दृष्टि से भी स्वस्थ हो, शिक्षित व प्रतिष्ठित भी हो परन्तु ऐसा भी सम्भव है कि एक व्यक्ति निर्धन, अशिक्षित व अस्वस्थ या रोगी हो। ऐसी स्थिति में सम्पन्न व्यक्ति का क्या यह कर्तव्य नहीं बनता कि वह समाज के निर्बल लोगों की आर्थिक सहायता व सेवा करे? स्वस्थ युवा व धनी मानी लोगों का कर्तव्य है कि वह समाज के अस्वस्थ व निर्धन लोगों को उनकी आवश्यकता के अनुरूप यथासम्भव सेवा व आर्थिक सहायता करें जिससे कि वह अपना जीवन सामान्य रूप से व्यतीत कर सकें और समाज के निर्बल वर्ग की भी शारीरिक, बौद्धिक व आत्मिक उन्नति हो सके।

आईये, कुछ चर्चा धर्म की करते हैं। धर्म की अनेक परिभाषायें की जाती हैं जिनमें से एक है कि सभी मनुष्यों अपने जीवन में शुभ गुणों को धारण करना चाहिये। यह शुभ गुण व कर्म क्या हो सकते हैं? व्यक्तिगत गुणों में तो मनुष्य को अपने स्वास्थ्य को अनुकरणीय बनाने के लिए आहार, निद्रा, संयम व व्यायाम आदि के नियमों का पालन करना चाहिये। विद्यालयी व व्यवसायिक शिक्षा व ज्ञान के साथ सामाजिक ज्ञान व आध्यात्मिक ज्ञान में भी पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। शुभ गुणों की चर्चा आने पर पहला गुण तो यह है कि उसे सत्य व धर्म का आचरण करना चाहिये। प्राचीन वैदिक शिक्षा में जब ब्रह्मचारी शिक्षा समाप्त कर गुरूकुल से लौटता था तो दीक्षान्त भाषण में उसका आचार्य जो शिक्षायें देता था उनमें पहली शिक्षा **''सत्यं वद्, धर्म चर तथा स्वाध्यायां मा प्रमदः''** होती थी। आज भी इन शिक्षाओं का महत्व निर्विवाद है। 'सत्यं वद' में हम कह सकते हैं कि मनुष्य के मन, मस्तिष्क व आत्मा में जो ज्ञान है, उसी के अनुरूप उसे व्यवहार करना चाहिये अर्थात् मन, वचन व कर्म में एकता होनी चाहिये। ऐसा नहीं होना चाहिये कि उसका आचरण उसके मन व आत्मा में निहित विचारों के प्रतिकूल हो। मन के ज्ञान के अनुसार ही वचन को बोलना व कर्मों का करना वास्तविक वा यथार्थ धर्म है। नियमित सदग्रन्थों का स्वाध्याय करने से मनुष्य के बौद्धिक ज्ञान में वृद्धि होने के साथ उसकी आत्मोन्नति भी होती है। अतः स्वाध्याय में प्रमाद करना अपनी आत्मा व जीवन की उन्नति में अवरोध लाना ही कहा जा सकता है। अब सेवा को धर्म से जोड़ कर देखते हैं। मनुस्मृति में धर्म की चर्चा करते हुए कहा गया है कि दूसरों के प्रति वह आचरण कदापि नहीं करना चाहिये जो आचरण हम दूसरे व्यक्तियों से अपने लिए पसन्द न करते हों। जिस प्रकार से हमें दूसरो का झूठ बोलना पसन्द नहीं है तो हमें भी किसी से असत्य का व्यवहार नहीं करना चाहिये। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सत्य बोलना धर्म है। इसी प्रकार से यदि हम कष्ट या मुसीबत में फंस जायें तो हम दूसरों से सहायता की अपेक्षा करते हैं। इसी प्रकार से हमारा भी कर्तव्य है कि यदि हम कहीं किसी को कष्ट या मुसीबत में देंखे तो उसकी मदद करें। यही सिद्धान्त सेवा पर भी लागू होता है। दूसरों की मदद करना ही सेवा है। यदि समाज से दूसरों की मदद करने की भावना का विस्तार व प्रचार–प्रसार हो तो फिर किसी को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। हम दूसरों की सेवा व मदद करेंगे तो आवश्यकता या आपातकाल में दूसरे भी हमारी मदद अवश्य करेंगे। अतः सभी मनुष्यों को दूसरों की सेवा का व्रत धारण करना चाहिये इससे हमारा समाज सामाजिक दृष्टि से उन्नत व सुखी होगा।

यज्ञ सनातन वैदिक धर्म संस्कृति का प्रमुख अंग है। यज्ञ देव पूजा, संगतिकरण तथा दान का समन्वित रूप होता है। देव पूजा में ईश्वर सहित सभी 33 जड़ व चेतन देवों की पूजा व सत्कार सम्मिलित है। संगतिकरण का तात्पर्य है कि वेद आदि शास्त्रों के विद्वानों व ज्ञानियों का संगतिकरण कर उनके ज्ञान व अनुभव को प्राप्त करना। यह संगतिकरण विद्वानों के उपदेशों के श्रवण, वार्तालाप, उनसे पढ़कर, शंका समाधान आदि के द्वारा होता है। यह भी एक प्रकार से विद्वानों व ज्ञानियों की सेवा ही होता है। हम उनकी सेवा करेंगे, उन्हें आदर व सम्मान देंगे, उनके आश्रमों व निवासों पर समित्पाणि होकर जायेंगे तभी उनसे ज्ञान मिलना सम्भव है। हमने स्वयं भी संगतिकरण से लाभ उठाया है। सत्संगों में जाने और विद्वानों के उपदेश सुनने में हमारी प्रवृत्ति रही है। जिस विद्वान ने जिस ग्रन्थ पर आधारित प्रवचन किया या अपने उपदेश में जिस शास्त्र या ग्रन्थ विशेष का उल्लेख किया, हमने उस ग्रन्थ को प्राप्त कर उसे पढ़ा जिससे हमें उस ग्रन्थ की विषय–वस्तु व उसके विस्तार व उसमें निहित व उद्घोषित तथ्यों का ज्ञान हो गया। इस प्रकार स्वाध्याय करते–करते हमारी आज की स्थिति आ गई और हम विगत 25 वर्षों से महापुरूषों के जीवनों व आध्यात्मिक विषयों पर लेख आदि लिख लेते हैं। स्वाध्याय का हमारा व्रत चल रहा है। **स्वाध्याय भी एक प्रकार से ग्रन्थ व पुस्तक के लेखक के साथ संगति ही होता है। ग्रन्थ को पढ़कर लेखक के प्रति हमारे अन्दर जो आदर के भाव**

**उत्पन्न होते हैं उससे उस विद्वान की अप्रत्यक्ष रूप से सेवा हो जाती है।** यदि स्वाध्याय की प्रवृत्ति न हो तो किसी लेखक द्वारा लिखी गई पुस्तक अनावश्यक सिद्ध हो जाती है और उसने अपने जीवन के अनुभव से पुस्तक के विषय में जो ज्ञान व अनुभव प्रस्तुत किये हैं, उससे भावी पीढ़ी लाभान्वित नही हो पाती। अतः जीवित विद्वानों का प्रत्यक्ष रूप से संगतिकरण कर उनकी मौखिक व दान आदि से सेवा करना तथा दिवंगत विद्वानों के ग्रन्थों को पढ़ना भी एक प्रकार से सेवा का उदाहरण होने के साथ जीवन में अनेकशः लाभ प्रदान करता है।

हम एक छोटा सा सेवा व सहायता का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे थे। एक बार वैदिक धर्म के विश्व विख्यात प्रचारक महर्षि दयानन्द किसी स्थान पर विराजमान थे। उन्होंने देखा कि सामने सड़क पर एक झोटा गाड़ी सामान से लदी हुई चढ़ाई पर जा रही है। भार अधिक होने के कारण झोटा प्रयास कर भी आगे नहीं बढ़ पा रहा है। उसका मालिक सोटे से बार–बार उसे पीट रहा है परन्तु वह झोटा प्रयत्न करने पर भी आगे बढ़ने में असमर्थ है। दयावान महर्षि दयानन्द अपने स्थान से उठे और उस गाड़ी के पीछे जाकर उसे आगे बढ़ाने में अपने बल का सहयोग किया जिससे वह गाड़ी आसानी से चढ़ाई पार कर गई। ऐसा करने पर गाड़ी का मालिक बहुत ही कृतज्ञता अनुभव कर हाथ जोड़कर दयानन्द जी का धन्यवाद कर रहा था तो उन्होंने कहा कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह तो उनका कर्तव्य व धर्म था। यह उदाहरण यद्यपि छोटा है परन्तु इससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है। ऐसे उदाहरण हमें यदा–कदा देखने को मिलते रहते हैं। यदि हम इसे अपनी प्रवृत्ति में सम्मिलित कर लें तो इससे समाज में एक अच्छा संदेश जा सकता है और एक अच्छी परम्परा को स्थापित किया जा सकता है। यहां हम यह भी जोड़ना चाहते हैं कि ईश्वर के गुणों का अध्ययन करने पर हमें उसमें दया और करूणा का गुण भी ज्ञात होता है। यदि माता–पिता के समान हमारे जन्मदाता परमात्मा में दया और करूणा का गुण है तो हमारे अन्दर भी यह गुण अवश्य ही विद्यमान होना चाहिये। यदि हम ऐसा नहीं करते तो हम ईश्वर को अप्रसन्न करते हैं और इससे हमारी ही हानि होती है।

हमारा वेदों के विद्वान और देश के विभिन्न भागों में 9 आर्ष गुरूकुलों के संचालक स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती से निकट सम्पर्क है। कुछ वर्ष पूर्व स्वामीजी इतने रोगी हो गये कि उन्हें लगभग 6 माह से अधिक शय्या पर ही रहना पड़ा। कैंसर जैसा भयानक रोग उन्हें बताया गया। उनकी चिकित्सा चलती रही और वह स्वस्थ हो गये। इसके अतिरिक्त भी उन्हें अनेक बार अनेक प्रकार की शारीरिक व्याधियों ने आक्रान्त किया परन्तु वह स्वस्थ होते गये। हमने एक बार उनसे पूछा कि स्वामीजी आप अनेक रोगों से अनेक बार त्रस्त रहे और असाध्य रोग पर भी आपने विजय प्राप्त की, इसका मुख्य श्रेय आप किस बात को देते हैं तो उन्होंने कहा कि मैंने जीवन में वृद्धों व विद्वानों की यथासम्भव सेवा की है। मेरा बार–बार रोगाक्रान्त होकर पुनः स्वस्थ हो जाना, मैं उनके आशीर्वाद का परिणाम मानता हूं। हमें लगता है कि उनकी यह बात सर्वथा सत्य है। सेवा करने पर हमें जो शुभकामनायें व आशीर्वाद मिलता है उससे हमें जीवन में आयु, विद्या, यश व बल की प्राप्ति होती है, ऐसा मनुस्मृति में वर्णित है और इस ग्रन्थ के यह विचार व विधान सत्य सिद्ध हैं तथा स्वामीजी का जीवन इसका प्रमाण है।

सेवा में अनेक रूप हो सकते हैं। किसी रोगी की सेवा करना भी सेवा के ही अन्तर्गत आता है। रोगी की सेवा उसके लिए अच्छा भोजन, वस्त्र, ओषधियां व चिकित्सा की सुविधा प्रदान कर की जा सकती है। आज कल चिकित्सा के क्षेत्र में अनाचार चरम पर सुना जाता है। हम भी अपने जीवन में यदा–कदा इसका अनुभव करते रहते हैं। चिकित्सों को तो ईश्वर के बाद दूसरा स्थान प्राप्त है। रोगियों के प्रति उनकी सद्भावना होनी चाहिये न कि येन केन प्रकारेण उनसे अधिकाधिक धन कमाने की प्रवृत्ति। परन्तु स्वार्थ की प्रवृत्ति का आजकल सभी वर्गों में अमर्यादित रूप से विस्तार हो रहा है जिससे समाज में सर्वत्र चिन्ता व दुःख अनुभव किया जा रहा है। इसका भविष्य में क्या परिणाम होगा, इसका अनुमान लगाना कठिन है। हमें लगता है कि ऐसा वैदिक शिक्षा से दूर जाने के कारण हुआ है। जब तक बच्चों को आरम्भ से वेद व उपनिषद के अनुसार आध्यात्मिक विज्ञान की शिक्षा नहीं दी जायेगी, निःस्वार्थ जीवन व्यतीत करने वाले सत्पुरूष समाज में उत्पन्न नही किये जा सकते। अपवाद तो हो सकते हैं परन्तु शुभ गुणों से युक्त मनुष्य का निर्माण वैदिक आध्यात्मिक शिक्षा व संस्कारों से होना ही सम्भव है। हम समझते हैं कि जीवन को सफल करने के लिए हमें आपने चारों ओर के वातावरण में सबको स्वस्थ, शिक्षित व सम्पन्न बनाने का प्रयास व ऐसी सद्भावनाओं को अपने हृदय में स्थान देना होगा, साथ हि इसके लिए मन, वचन व कर्म से प्रयास व सहयोग करना होगा, तभी हम मनुष्य जीवन को सार्थक कर सकेंगे। वैभव पूर्ण जीवन जीना ही प्रशस्त जीवन नहीं है अपितु दूसरों के दुःखों का निवारण करना और सबकी प्रसन्नता में प्रसन्न होना ही वास्तविक मनुष्य जीवन है।

**–मनमोहन कुमार आर्य**
**पताः 196 चुक्खूवाला–2**
**देहरादून–248001**
**फोनः 09412985121**